



ISSN 2455-5169
वर्ष 1, अंक 1, (जनवरी-मार्च, 2016)

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

(त्रैमासिक ई-पत्रिका)

संपादक

महेश सिंह



परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

ISSN 2455-5169
वर्ष 1, अंक 1, (जनवरी-मार्च, 2016)

सम्पादन मंडल

सम्पादक

महेश सिंह, हिंदी विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पुदुचेरी

सह-संपादक

संतोष कुमार (शोधार्थी), गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

अखिलेश गुप्ता (शोधार्थी), हिंदी विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, मध्य प्रदेश

उप-संपादक

रामधन मीणा (शोधार्थी), हिंदी विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पुदुचेरी

अनूप कुमार (शोधार्थी), इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं जन संचार विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पुदुचेरी

परामर्श मंडल

श्याम कश्यप (वरिष्ठ पत्रकार)

प्रोफेसर वीरेन्द्र मोहन (हिंदी विभाग पूर्व अधिष्ठाता), भाषा अध्ययनशाला डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

वैभव सिंह (युवा आलोचक), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. प्रमोद मीणा (सहायक प्राध्यापक), हिंदी विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय

पुनीत विसारिया (साहित्यकार एवं फिल्म समीक्षक), एसोशिएट प्राध्यापक, नेहरु पी जी कॉलेज ललितपुर उ. प्र.

प्रो. चंदा बैन (विभागाध्यक्ष), हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, म.प्र.

डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय (सहायक प्राध्यापक), हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

डॉ. अमित सिंह परमार (सहायक प्राध्यापक), मुंगेली, छत्तीसगढ़

श्री मुरली मनोहर सिंह (सहायक प्राध्यापक), हिंदी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर छ.ग.

डॉ. रमेश गोहे (सहायक प्राध्यापक), हिंदी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर छ.ग.

उद्भव मिश्र (साहित्यकार), देवरिया उ.प्र.

डॉ. राजेश मिश्र (अतिथि - सहायक प्राध्यापक), हिंदी विभाग, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय बिलासपुर छ.ग.

दिलीप खान (पत्रकार), राज्य सभा टेलीविज़न, दिल्ली

श्रीरेन्द्र राय (सहायक प्राध्यापक), पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



परिवर्तन

संसार का नियम है। इस नियम का पालन प्रकृति भी करती है और समाज भी, जहाँ प्रकृति का परिवर्तन व्यापक होता है वहीं समाज का संकुचित। लेकिन आज के परिवेश में जो भूमंडलीकरण का दौर चल रहा उसे व्यापक परिवर्तन की श्रेणी में रखा जा सकता है, क्योंकि इसका प्रभाव किसी समुदाय, समाज या राष्ट्र-राज्य की परिधि में नहीं है। भूमंडलीकरण ने लगभग सारी सीमाओं को लॉचकर संसार के कोने-कोने में जाकर प्रत्येक व्यक्ति तक को प्रभावित किया है। हालाँकि इसमें भी अच्छाई और बुराई का समावेश है। वैसे इसका अभीतक और कोई विकल्प भी नहीं है। भूमंडलीकरण का सबसे मजबूत पक्ष, इसका मायावी होना है, जिसे आर्थिक-माया का नाम दिया जा सकता है। आर्थिक-माया इसलिए कि इसका 'ब्रह्माख' अर्थ है और अर्थ के बिना मानव जीवन व्यर्थ (भौतिक-जीवन के विशेष संदर्भ में) है। हम इसका विरोध करते हुए भी इसके साथ हैं। अभय कुमार दूबे ठीक ही कहते हैं – "भूमंडलीकरण एक बेहद ताकतवर परिघटना है जो सब कुछ बदल दे रही है। वह दोनों तरफ से बदलती है यानि वह हालत को अपने सार्वभौमिक सांचे में तो ढालती ही है उसके प्रति उसके विरोधियों की प्रतिक्रिया भी एक खास तरह के परिवर्तन को जन्म देती है जो शुरू में भूमंडलीकरण के खिलाफ लगता है, पर अंतिम विक्षेपण में उसकी संरचनाओं की मदद करता पाया जाता है"। (भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण-२००८, पृष्ठ-२७)

'ऐसी परिस्थिति में 'परिवर्तन' नाम से पत्रिका निकालकर भला मैं क्या परिवर्तन कर सकता हूँ ? मेरे मन में यह सवाल बार-बार तबतक घूमता रहा, जबतक कि मैं युवा कवि प्रेमचन्द्र 'नंदन' की कविता की ये चार पंक्तियाँ नहीं पढ़ा था:

आजादी के इतने सालों बाद भी / जिनकी रोटी / छोटी होती जा रही है
और काम पहुँच से बाहर / जिनके छोटे-छोटे सपने / इसमें ही परेशान हैं
कि अगली बरसात / कैसे झेलेंगे इनके छप्पर / भतीजी की शादी में
कैसे दें एक साड़ी / कैसे खरीदें / अपने लिए टायर के जूते ।

मेरा अनुमान है कि कविता की इन चार पंक्तियों को पढ़ने के बाद आप भी हमसे काफी हद तक सहमत होंगे कि निसंदेह आज इस परिवर्तन की आवश्यकता है। किसी भी समाज में या उसकी व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए साहित्य, सिनेमा और मीडिया से बड़ा माध्यम क्या हो सकता है। इस दृष्टि से पत्रिका का नाम 'परिवर्तन' रखना हमें काफी हद तक सार्थक लगा।

खैर ! आज पत्रिका का प्रवेशांक आपके सामने है। इस अंक में पहला आलेख प्रभुदयाल मिश्र द्वारा लिखा गया 'ईशावास्य : रामचरित मानस का आधार दर्शन' है। तुलसीकृत रामचरित मानस के दार्शनिक आधारों की खोज करते हुए,



अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न

*अखिलेश गुप्ता

मुक्तिबोध ने जब सन् 1962 में 'भारत : इतिहास और संस्कृति' मध्यप्रदेश के हाईस्कूल की कक्षाओं के लिए लिखा तब शिक्षा विभाग ने उसे पाठ्यक्रम में शामिल करने की स्वीकृति दे दी। लेकिन इसके बाद संस्कृति के तथाकथित रक्षकों ने मुक्तिबोध और उनकी पुस्तक के खिलाफ आक्रमण और आन्दोलन का एक सुनियोजित अभियान चलाया। भोपाल में मुक्तिबोध के इस पुस्तक की प्रतियाँ ही जला दी गयीं, उत्तेजनापूर्ण भाषण हुए। यह भी कहा गया कि "यह पुस्तक लेखक के विकृत मस्तिष्क की उपज है।" (वह बात उनको बहुत नागवार गुजरी है : मैनेजर पाण्डेय) वस्तुतः 19 सितंबर 1962 को राजपत्र द्वारा पुस्तक पर प्रतिबंध लगा दिया गया। राजपत्र के अनुसार पुस्तक को 'भद्रता और नैतिकता के विरुद्ध' घोषित कर दी गयी। 'भद्रता और नैतिकता के विरुद्ध' केवल इसलिए कि उन्होंने संस्कृति को वेद अथवा ईश्वर प्रदत्त न मानकर यह लिखा कि "जीवन जैसा है उससे उसे अधिक अच्छा, सुन्दर, उदात्त और मंगलमय बनाने की इच्छा आरंभ से ही मनुष्य की रही है। यही इच्छा जब सामाजिक स्तर पर रूप ले लेती है तब संस्कृति कहलाती है।" (2) इसलिए इससे मतलब यही निकाला जा सकता है कि पुस्तक पढ़ने के बाद छात्रों में "भारतीय जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यों के प्रति निष्ठा (धार्मिक) के स्थान पर अनास्था ही उत्पन्न होगा।" (3)

पुस्तक की प्रतियों को जलते हुए देखकर मुक्तिबोध ने लिखा था कि "मध्यप्रदेश में विवेक चेतना से प्रेरित अभिव्यक्ति के दिन गए। वैज्ञानिक शास्त्रीय दृष्टि की अभिव्यक्ति अब यहाँ अपराध घोषित हुई, हो सकती है आगे भी।" (4) उस समय छिटपुट लेखों में इसकी निंदा के अलावा और कुछ नहीं किया गया। कहीं कोई प्रतिकार नहीं, एक बहुत बड़ा बौद्धिक वर्ग खामोश रहा,

"सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक/ चिंतक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं;/ उनके खयाल से यह सब गप है/ मात्र किंवदन्ती।" (5) मुक्तिबोध यहाँ भी भविष्यद्रष्टा ही साबित हुए। 'हो सकती है आगे भी' की इस शृंखला को हम पेरुमल मुरुगन का उपन्यास 'मधोरुबगन' (अर्द्धनारीश्वर) से जोड़कर भी देख सकते हैं जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए भी प्रस्तावित किया जा रहा था। पेंग्विन ने पिछले वर्ष इस उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद 'One Part Woman' नाम से प्रकाशित किया। 2010 में प्रकाशित इस उपन्यास में 'नियोग प्रथा' का जिक्र किया गया है जिसे धर्म में मान्यता भी प्राप्त थी (भले ही अब वह अमान्य हो)। इस पर भी प्रतिबन्ध लगाकर प्रतियाँ जला दी गयीं। लेखक के परिवार के सदस्यों को धमकियाँ दी जाने लगी, फोन पर गालियाँ दी गयीं। परिणामस्वरूप मुरुगन को 'फेसबुक' पर लिखना पड़ा- "लेखक पेरुमल मुरुगन मर गया है। चूंकि वह ईश्वर नहीं है, इसलिए उसके द्वारा जीवित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। और पुनर्जन्म में मेरा विश्वास भी नहीं है। इसलिए अब मैं सिर्फ एक मामूली अध्यापक पी मुरुगन की तरह जिंदा हूँ। मुझे अपने हाल पर छोड़ दिया जाए!" (6) (...वो बात उनको बहुत नागवार गुजरी है! :जितेन्द्र भाटिया)

हम देश में वैज्ञानिक चेतना की दरकार को शिद्दत से महसूस तो करते हैं, लेकिन क्या कारण है कि धर्म के क्षेत्र में इसकी घुसपैठ किसी को भी बर्दाश्त ही नहीं हो रहा; जबकि धर्म का काम जीवन को उदात्त, सुंदर और सुखमय बनाना रहा है। धर्म के नाम पर जो प्रश्न चल पड़े हैं, क्या उसका निर्मूलन किया जाना उचित नहीं है! आज भी टोनही के संदेह पर महिलाओं को मौत के घाट उतार दिया जा रहा है। जादू-टोना, भूत-प्रेत, छुआछूत, अंधविश्वास जैसी कुरीतियों का धर्म के नाम पर आज भी बोलबाला है। ऐसे में अंधश्रद्धा को



जब मुक्तिबोध के पुस्तकों की प्रतियाँ जला दी गईं, तब छिटपुट पत्रिकाओं में विरोध के सिवा और कुछ नहीं किया गया। अब जबकि पी. मुरुगन के पुस्तक की प्रतियाँ जला दी गईं, साहित्यकारों के अकादमिक तार्किक बातों पर धार्मिक संकीर्णता के कारण सिलसिलेवार ढंग से बौद्धिक विचारों का सामना न कर पाने की स्थिति में हत्या किए जा रहे हैं तब ऐसे डरावने और विचलित करने वाले माहौल में साहित्यकारों ने पुरस्कार लौटाकर खामोशी तोड़ने की कोशिश की। 'भय भी शक्ति देता है' कहते हुए पुरस्कार लौटाने की पहल करने वाले उदय प्रकाश कहते हैं- "एक समय था जब हमारे लेखकों का सम्मान होता था, उनकी एक गरिमा थी। लेकिन आज अगर आप राजनीतिक, सांस्कृतिक या सामाजिक मसलों पर तार्किक आलोचना करते हैं, तो लोग उसे वर्दाशत नहीं करते। वे हिंसात्मक होकर आपको प्रताड़ित करते हैं। हर चीज का सांप्रदायिकरण हो रहा है, कला जगत भी इससे अछूता नहीं है।... अपराधियों को सुरक्षा देने वाले देश में लेखकों की हालत यह है कि कोई भी आकर उन्हें मार सकता है। लेखक अकेलेपन में जी रहा है।"¹⁴

पुरस्कार लौटाकर खामोशी तोड़ने की कोशिश करने वालों पर साहित्य अकादमी के अध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद तिवारी द्वारा प्रतिक्रिया मिलना स्वाभाविक है। उनका कथन है- "इस तरह के आरोप लगातार लगाए जा रहे हैं कि साहित्य अकादमी लेखकों के साथ नहीं है या उनकी हत्याओं पर मौन है। इसमें कोई भ्रम नहीं होना चाहिए कि मैं अपने लेखकों के साथ हूँ। उनकी लेखकीय स्वतंत्रता का समर्थन करता हूँ। उनपर हो रहे हमलों की निंदा करता हूँ, लेकिन फिर भी कहूँगा कि इन सबके लिए पुरस्कार लौटाने को सही नहीं मानता।... जहाँ तक सरकार को अकादमी की ओर से कोई संदेश देने का सवाल है तो हम सरकार को कोई संदेश नहीं दे सकते। हम गलत चीजों की निंदा कर सकते हैं, वह मैंने की।"¹⁵

उदय प्रकाश बताते हैं, "जब प्रो. कलवुर्गी की हत्या हुई, उस समय मैं अपने गाँव में था। पाँच दिन से बिजली

नहीं थी। चार सितंबर को मैं गाँव के ढाबे पर गया, वहाँ पर अपना मोबाइल चार्ज किया और फेसबुक खोला तो पता चला कि कलवुर्गी की हत्या कर दी गई है। यह घटना बेहद डरावनी और विचलित करने वाली थी। हत्या हुए पाँच दिन बीत गया था, लेकिन उन्हें पुरस्कृत करने वाली साहित्य अकादमी ने भी तब तक कोई कदम नहीं उठाया था। आप लेखक को सम्मानित तो करते हैं, लेकिन वह निहायत ही अकेलेपन में जीता है। उसकी मौत पर भी उसके साथ कोई नहीं है। उस वक्त के दुख और भय की वजह से मैंने वहाँ से यह घोषणा की कि मैं यह पुरस्कार लौटा रहा हूँ।"¹⁶ आज जबकि लेखकीय स्वतंत्रता पर ध्यानाकर्षण हेतु बौद्धिक वर्ग का एक बहुत बड़ा खेमा सरकार का ध्यान इस दिशा में दिलाने हेतु पुरस्कार लौटाकर अपना विरोध प्रदर्शित कर रहे हैं। तब फेसबुक, इंटरनेट, पत्र-पत्रिकाओं और अखबारों पर इसे राजनीतिकरण का हिस्सा मानकर तमाम तरह की फब्तियाँ कसी जा रही है। 'अब क्यों तब क्यों नहीं?' जैसे जुमलों का प्रयोग कर इसे सारहीन करार दिया जा रहा है। जबकि साहित्यकारों के पास अपनी लेखनी के सिवाय यदि कोई और चीज है तो वह है- 'अपना सम्मान'। अपना पूरा सम्मान गँवा देने के बावजूद उन्हें केवल दुल्कार ही मिल रहा है। अगर साहित्यकार पुरस्कार लौटाकर केवल राजनीतिकरण भर कर रहे हैं तो इसका प्रतिफल क्या मिल रहा है उन्हें- 'सिवाय दुल्कार के।' आज साहित्यकारों की हालात के संदर्भ में गालिव का यह शेर प्रासंगिक लगता है-

"जला है जिस्म जहाँ, दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख, जुस्तजू क्या है।"

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. पाण्डेय, मैनेजर, आलोचना की सामाजिकता, 2012, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली, पृ. 150
2. वही, पृ. 153
3. वही, पृ. 150
4. वही, पृ. 151